RESEARCH PAPER

RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
e-ISSN: 2455-3085 | Vol.06 | No.12 | December 2021 | pp. 159-163
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

Analysis of Social and Political Thoughts of Dr. Bhimrao Ambedkar

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का विश्लेषण

Dr. Jitendra Kumar Bairwa

Assistant Professor, Political Science

Abstract in English

The process of social change is an integral process going on at many levels and through many methods. When society is formed by a group of individuals or classes, then gradually some rules and bye-laws are made. At its core, the vision is only so that everyone situated in that society should get the proper opportunity of personality. Every person should be free to fulfill his basic needs, there should be no restriction of any person or group on him. All this is the basic principle of every society. Gradually, these principles become permanent, as a result, some 'texts' are needed to give them a legal form. When the 'Granth' is not composed by the society or the society wants to avoid the creation of such 'Granths' or 'Sahitya', then any competent and learned person can compose such 'Granths' in the name of religion, God. but does. These 'Granths' established in the name of religion and God are accepted by the society for a long time. In these 'texts' some inhuman, undemocratic and impractical provisions are also included by its creator. No one even opposes it, because 'religion is like a pill of opium'. Many people suffer from this system, so the flame of rebellion slowly starts growing inside these oppressed classes, but they do not have the capacity to rebel. As a result, any sensitive, capable and revolutionary person of this society rebels against this system and advocates the needs of a new system. Babasaheb Dr. Ambedkar ji is a rebellious legend of this tradition.

Keywords: *Society, Social, Political, Ambedkar caste, Varna-system*

Abstract in Hindi

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया, कई स्तरों पर और कई पद्धतियों से चलने वाली एक अखण्ड प्रक्रिया है। व्यक्ति या वर्ग के समूह से जब समाज बनता है, तो धीरे–धीरे कुछ नियम–उपनियम बनाये जाते है। इसके मूल में दृष्टि केवल इतनी ही होती है कि उस समाज में स्थित प्रत्येक को व्यक्तित्व का समुचित अवसर उपलब्ध हो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्वतंत्र हो उस पर किसी व्यक्ति अथवा गुट का कोई बंधन न हो। यह सब, प्रत्येक समाज का मूलभूत सिद्धान्त होता है। धीरे–धीरे ये सिद्धान्त स्थायी बन जाते है, फलतः इनको वैधानिक स्वरूप देने के लिए किसी 'ग्रन्थ' की आवश्यकता पड़ती है। जब 'ग्रन्थ' की रचना समाज के द्वारा नहीं हो पाती या समाज इस प्रकार के 'ग्रन्थों' अथवा 'साहित्य' की रचना से बचना चाहता है, तो कोई सक्षम और विद्वान व्यक्ति इस प्रकार के 'ग्रन्थ' की रचना धर्म, ईश्वर के नाम पर करता है। धर्म और ईश्वर के नाम पर स्थापित ये 'ग्रन्थ' काफी समय तक समाज द्वारा स्वीकृत होते है। इन 'ग्रन्थों' में इसके रचनाकार द्वारा कुछ अमानवीय, अलोकतान्त्रिक और अव्यावहारिक प्रावधानों को भी शामिल कर दिया जाता है। इसका कोई विरोध भी नहीं करता, क्योंकि 'धर्म अफीम की गोली के समान है।' ये ग्रन्थ अपरिवर्तनशील होते है, फलतः व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न होता है। इस व्यवस्था से अनेकशः लोग पीड़ित होते है, इसलिए इन शोषित वर्गो के अन्दर विद्रोह की ज्वाला धीरे–धीरे पनपने लगती है, लेकिन उनके अन्दर विद्रोह करने की क्षमता नहीं होती। परिणामतः इस समाज का कोई संवेदनशील, सक्षम और क्रांतिकारी व्यक्ति इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह कर एक नयी व्यवस्था की आवश्यकताओं की वकालत कर देता है। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर जी इसी परम्परा के विद्रोही महापुरूष है।

मुख्य शब्दः *समाज, सामाजिक, राजनीतिक, अम्बेडकर जाति, वर्ण–व्यवस्था।*

Article Publication

Published Online: 15-Dec-2021

***Author's Correspondence**

Dr. Jitendra Kumar Bairwa

Assistant Professor, Political Science

jitendralaxmi.jpr[at]gmail.com

© 2021The Authors. Published by RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

शोध विस्तार:– व्यक्ति का जन्म उसके वंश की बात नहीं है, उसके पैदा होते ही, जाति वंश और धर्म उससे जुड़ जाते है। इनसे उसकी मुक्ति नहीं है। परन्तु कर्म ही उसके जीवन को बनाता–बिगाड़ता है। काम करने की योग्यता, उसका कर्म या तो उसे अपयश की खाई में गिराता है या फिर उसे ख्याति के उच्च शिखर पर पहुंचाने का सौभाग्य प्रदान करता है। संसार के महापुरूषों के चरित्रों का अध्ययन करते समय यह बात हमारे ध्यान में अवश्य आती है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता। यह महानता उसे अपने जीवन में त्याग और परिश्रम की भारी पूंजी लगाकर प्राप्त करनी होती है। इसलिए महाभारत में कर्ण के मुख से जो उक्ति कहलवाई गयी है, यह अत्यन्त उपयुक्त है।[1]

कर्ण को सूतपुत्र विशेषण से संबोधित कर अपमानित किया जाता था। किन्तु जिस कुल में उसका जन्म हुआ, उसे भले ही कितना भी हीन घोषित कर दिया गया हो, उसमें कर्ण का क्या दोष है ? कर्ण को इसका पूरा बोध था कि अपना पुरूषार्थ दिखाना तो उसके हाथ की बात है। इसलिए जब भी दानशीलाता और पुरूषार्थ की पराकाष्ठा की उपमा देनी है तो कर्ण को याद किया जाता है। अमेरिका और रूस विश्व के दो शक्तिशाली देश है। इन दोनों देशों के प्रमुख निर्माताओं के रूप में रूस के एक समय के सर्वेसर्वा स्टालिन और अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का नाम लेना पड़ता है। ये दोनों ही महापुरूष एक साधारण परिवार में पैदा हुए थे। स्टालिन का जन्म एक चर्मकार के घर में हुआ था। लिंकन भी फलों के बाग में बागवानी करने वाली एक जारज महिला की संतान थे। किन्तु इन दोनों व्यक्तियों के विकास में सामाजिक गुलामी की बेड़ियों ने बांधा नहीं पहुंचायी थी। बाबा साहब अम्बेडकर अस्पृश्य मानी जाने वाली महार जाति में पैदा हुए थे, इसलिए उनके जन्म से ही सामाजिक वातावरण लिंकन और स्टालिन के विपरीत था। फिर भी उन्होंने इस देश के जनजीवन में जो क्रांति पैदा की उसकी कोई मिशाल नहीं है। उसे अद्वितीय ही कहना होगा। अब्राहम लिंकन ने अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी भागों को एकता के सूत्र में बांधकर वहां के काले और गोरों के भेद को सबसे पहले समाप्त किया और अमेरिका में प्रथम बार लोकतांत्रिक राज्य प्रणाली की नींव डाली। उसके विपरीत स्टालिन ने व्यक्ति की स्वतंत्रता का विरोध कर सारे राज्य में समाज सत्तावादी अर्थव्यवस्था को स्थापित किया। डॉ. अम्बेडकर ने प्रजातंत्र और साम्यवाद में समन्वय स्थापित करने का स्वप्न साकार करने का प्रयास किया। उन्होंने हजारों वर्षों से हिन्दू धर्म द्वारा मान्य अस्पृश्यता को कानून के बल पर नष्ट करवाया। उन्होंने इस देश में जन–जन में निर्माण किये गये भेदों को मिटाकर समान अधिकारों को स्थापित करने वाला संविधान प्रदान किया और ढाई हजार वर्षों के बाद पहली बार प्रजातन्त्र के मूल्यों की नींव रखी। ऐसे अभूतपूर्व व्यक्तित्व के धनी डॉ. अम्बेडकर का जीवन जितना रोगहर्षक और संघर्षमय है, उतना ही वह शिक्षाप्रद भी है।[2]

एक दूसरी स्थिति भी होती है कि सामाजिक व्यवस्था बनने की प्रक्रिया में कुछ विशिष्ट वर्ग अधिक सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगते है। वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को अपनाने पर जोर देते है, जिसमें उस वर्ग को अधिक से अधिक संरक्षण प्राप्त हो तथा समाज में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था 'व्यक्ति' के बजाय 'वर्ग' अथवा 'वर्ण' को प्राथमिकता देता है। इससे असमानतापूर्ण समाज का निर्माण होता है। इसमें वर्ग को आधार मानकर वर्गीय असमानता की स्थापना की जाती है। समाज को अनेक वर्णों में विभक्त कर दिया जाता है। उच्च वर्ग के व्यक्ति निम्न वर्गीय व्यक्तियों को घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगते है। निम्न वर्ग का आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण किया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था आज से लगभग 3500 (पैतीस सौ वर्ष) वर्ष पूर्व विद्यमान थी और इस व्यवस्था का जनक 'मनु' था।

भारतीय इतिहास में महात्मा गौतम बुद्ध पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस 'मनुवादी' व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया। वे एक समता मूलक समाज की स्थापना की बात करते थे। उनका मानना था कि जब तक व्यक्ति के मानवीय मूल्यों–स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की हिफाजत और सम्मान नहीं होगा, एक आदर्श समाज की स्थापना संभव नहीं है। बुद्ध के इस विचार का समाज में व्यापक असर हुआ और समाज का अधिकांश भाग उनकी शरण में चला गया। बुद्ध के विचारों और दर्शन का व्यापक प्रचार प्रसार होता देख ''ब्राह्मणवादी व्यवस्था'' के पोषक लोगों के परम्परागत 'मनुवादी व्यवस्था' को और सुदृढ़ बनाने की कोशिश शुरू कर दी। महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरान्त मनुवादियों को अपने कार्य में सफलता भी मिली। 'मनुस्मृति' में दिये गये प्रावधनों को ब्रह्मलेख मान लिया गया। इससे समाज का एक वर्ग जो वर्गीय व्यवस्था के कारण निचला वर्ग अर्थात शूद्र कहलाया था, एक बार पुनः शोषण और उपेक्षा का शिकार बना। उसके मानवीय अधिकारों को उनसे छीन लिया गया। शनैः–शःनै उनके प्रति व्यवहार अधिक क्रूरतापूर्ण हो गया। उनके ज्ञानार्जन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, उन्हें धार्मिक संस्कारों को करने, भाग लेने तथा धर्म–ग्रन्थों को सुनने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया, उनके सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को छीन लिया गया। अज्ञान और निर्धनता की लम्बी परम्परा के कारण धीरे–धीरे यह वर्ग संवेदन शून्य हो गया। शूद्रो की इस स्थिति को 'पूर्वजन्म के कर्मवाद' तथा 'भाग्यवाद' के साथ जोड़ दिया गया।[3]

अछूतोद्वार या सामाजिक सुधार का एक नया दौर 1607 से 1857 ई0 तक ईस्ट इण्डिया के कारोबार में प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजों के भारत आगमन से एक नये युग का प्रारम्भ हुआ, अंग्रेज आधुनिक सभ्यता के जनक है। उनकी सभ्यता और संस्कृति क प्रभाव से भारतीय जन मानस प्रभावित हुआ। वे यहां आधुनिक ज्ञान–विज्ञान को लेकर आये। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा को प्रचारित–प्रसारित करने के लिए नये–नये स्कूलों की स्थापना की। इस अंग्रेजी शिक्षा का व्यापक प्रभाव देखने को मिला, परिणामस्वरूप यहां का नागरिक अपने परिवेश के प्रति जागरूक होने लगा। इस जागरूकता के कारण स्वतंत्रता, समता की मांग की जाने लगी। अंग्रेज एक लोकतान्त्रिक देश, ब्रिटेन से आये थे, इसका प्रभाव भी भारत पर पड़ा। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म का प्रचार–प्रसार आरम्भ कर दिया और समाज के उपेक्षित वर्ग को धर्मान्तरण कराने का प्रयास करने लगे। वर्ग और जाति–प्रथा की क्रूरतम मान्यताओं के कारण लोग इस धर्म के प्रति आकर्षित होने लगे।

'ब्रह्मसमाज' और 'आर्य समाज' ने सामाजिक सुधारों के लिए अभियान शुरू कर दिया। परन्तु आर्य समाज का 'वेदों की ओर लौटो' की अवधारणा से समाज में व्याप्त भेदभाव समाप्त न हो सका, क्योंकि वेद भी वर्णाश्रम व्यवस्था को मान्यता देता है। उस समय जितने भी प्रबुद्ध नागरिक थे, वे समाज में सुधार करने के पक्षधर थे, लेकिन वे इसके प्रति पूर्णतया सजग नहीं थे। वे समाज के दबे–कुचले 'अस्पृश्य' वर्ग का उद्धार तो करना चाहते थे, लेकिन अछूतोद्वार के प्रति उनकी यह भावना 'दया' से युक्त थी, न कि 'मानवीयता' के कारण। यह लोग धर्म–शास्त्रों की प्रामाणिकता को चुनौती देने से बचते थे। किन्तु समाज–सुधार की प्रक्रिया को अधिक तीव्र गति प्रदान करने का श्रेय बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर को है।

किसी भी पुरातन व्यवस्था को बदलने के लिए समाज का शिक्षित होना आवश्यक होता है। सनातनी मानसिकता के पोषक लोगों ने समाज के एक वर्ग को शिक्षा से वंचित कर दिया था, 'अस्पृश्य' वर्ग को केवल सेवा करने का दायित्व दिया गया, वे किसी प्रकार ज्ञानार्जन नही कर सकते थे। बाबा साहब आजादी के पूर्व पांच दलित ग्रेजुएट में से एक थे। उन्होंने पुरातन पंथी ग्रन्थों की प्रामाणिकता को चुनौती दी। अस्पृश्यों को शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने और उनको उनकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराने के उद्देश्य से उन्होंने 'शूद्र कौन थे ?' 'अस्पृश्य कौन और कैसे,' 'जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति और विकास', 'जाति व्यवस्था का उन्मूलन' आदि ग्रन्थों, अनेकशः निबन्धों आदि का सम्पादन किया। वे जगह–जगह पर भाषण और लेखों के माध्यम से 'अस्पृश्य' समाज को जागरूक बनाने का प्रयास कर रहे थे। अपनी विद्वता और ज्ञान से वे सवर्ण हिन्दुओं द्वारा उठाये गये प्रत्येक चुनौती का तर्क संगत उत्तर देते थे।[4]

अर्न्तजातीय सहभोज एवं अर्न्तजातीय–विवाह जिसका प्रतिबंध बाबा साहब के समय में था। आज उसका धीरे–धीरे लोप होता जा रहा है। आज के शिक्षित युवा युवतियॉ जाति प्रथा को अस्वीकार करते हुए अपनी पसन्द के और योग्य जीवन साथी का चुनाव कर रही है। राज्य सरकारें भी इन विवाहों को बढ़ावा दे रही है। सामूहिक–विवाह कार्यक्रम का आयोजन किया जा रहा है। इस संबंध में समाज की मानसिकता बदल रही है। यह एक शुभ लक्षण है। जातियों में जी रहा समाज पिछड़ रहा है। विचारधारा में जी रहा दलित समाज आगे बढ़ रहा है। आज दलित जीवन की सामाजिक चेतना अनुकरणीय बन रही है। शोषण से पीड़ित दलित समाज शासन के समीप पहुंच रहा है। अन्ध विश्वास से जकड़ा दलित समाज विश्वास की ओर बढ़ रहा है। अपमान में जी रहा दलित समाज सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने का लक्ष्य बनाकर गतिमान है।

डॉ. अम्बेडकर ने उद्घोषणा की थी कि मैं हिन्दू के रूप में अवश्य पैदा हुआ हूँ लेकिन हिन्दू के रूप में नहीं मरूंगा। बेशक, डॉ. अम्बेडकर हिन्दू के रूप में नहीं मरे उनका देहान्त बौद्ध के रूप में हुआ, लेकिन धर्मान्तरण का यह विचार लोकप्रिय नही हो सका। निःसंदेह अम्बेडकर के बाद भी अनेक दलितों ने दूसरे धर्म स्वीकार किया, पर इन्हें छिटपुट घटनाऐं ही कहा जा सकता है। बाबा साहब ने सभी धर्मों का अवलोकन करने के पश्चात् बौद्ध धर्म स्वीकार करने का निश्चय किया और दलितों को भी ऐसा ही करने को कहा। उनका यह विचार सत्य ही था, क्योंकि जहां–जहां भी दलितों ने इस्लाम या ईसाइयत को स्वीकार किया उसके कारण हिन्दू समाज में तनाव बढ़ा। यद्यपि धर्मान्तरण जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं करता, परन्तु हिन्दुओं को सोचने के लिए विवश कर सकता है। धर्मान्तरण दलितों को उस अपमान से मुक्ति दिलाता है, जिससे वह हिन्दू धर्म में रहते हुए सहता आया है। बाबा साहब ने हिन्दू धर्म द्वारा अछूतों के साथ किये जा रहे भेदभाव के कारण ही 'दलितों'/'अछूतों' की आत्मोनति के लिए हिन्दू धर्म से अलग होने का संकल्प लिया।[5]

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से अपने को पृथक रखते हुए अम्बेडकर ने 'स्वराज्य' की अपेक्षा 'अछूतोद्वार' के कार्यक्रम को अधिक महत्व प्रदान किया। दलित समाज को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ जुड़ने से रोकने एवं दलित, 'अस्पृश्य' समाज की उन्नति के लिए बाबा साहब ने 'अस्पृश्य' समाज को संगठित करने पर जोर दिया। एकता से साहस पैदा होता है। एकता के अभाव में कोई परिवर्तनकारी प्रक्रिया संचालित नहीं की जा सकती। 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा', 'स्वतंत्र मजदूर दल', 'अनुसूचित जाति परिसंघ' और अन्ततः 'रिपब्लिकन पार्टी का गठन' उन्होंने अस्पृश्य समाज को संगठित करने के उद्देश्य से ही किया था।

'शिक्षित', 'संगठित' बनने के बाद बाबा साहब ने अपने मानवीय अधिकारों को हासिल करने के लिए 'अस्पृश्य' वर्ग को संघर्ष करने का आहवान किया, क्योंकि यदि हिन्दू समाज 'अस्पृश्य' वर्ग के साथ समानता का व्यवहार नहीं करता, उसका शारीरिक, आर्थिक और मानसिक शोषण करता है, तो अस्पृश्य समाज अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए विद्रोह कर दे।

उपरोक्त परिवर्तनवादी दृष्टिकोण के अतिरिक्त बाबा साहब जनतान्त्रिक व्यवस्था के लिए दो और उपाय सुझाते है, जिनकी सहायता से व्यवस्था परिवर्तन के कार्यक्रम को गति दी जा सकती है। ये उपाय हैः (1) प्रेस अथवा पत्रकारिता का माध्यम (2) अपने अनुकूल वातावरण तैयार करने हेतु राजनीतिक सत्ता में भागीदारी होनी चाहिए ताकि, निर्णय–निर्माण में प्रभावी भूमिका अदा की जा सके। बाबा साहब 'बहिष्कृत–भारत', 'मूकनायक', 'जनता' समाचार पत्र के माध्यम से समाज परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील थे। मुम्बई विधायिका, प्रथम विधि मंत्री और संसद की राज्यसभा में वे सदस्य बनकर पूरी निष्ठा और ईमानदारी से परिवर्तन के लिए संघर्षरत रहे।[6]

भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता को दूर करने के लिए उन्होंने 'राज्य–समाजवाद' का समर्थन किया। वर्ग प्रधान समाज को मान्यता देना उचित नहीं है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार समाप्त होना चाहिए। समाज में व्याप्त आर्थिक–विषमता के उन्मूलन के लिए बाबा साहब देश की समस्त सम्पदा, उत्पादन के साधन तथा आर्थिक जगत के अन्य समस्त क्रिया–कलापों को राज्य के नियन्त्रण चाहते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाबा साहब देश की सम्पदा पर राज्य के माध्यम से नागरिकों का सामूहिक स्वामित्व स्थापित करना चाहते थे अर्थात व्यक्तिगत पूंजी का पूर्णतया अन्त। कृषि भूमि का राष्ट्रीयकरण, सामुदायिक खेती, औद्योगिक क्षेत्र में सौम्य स्वरूप का समाजवाद और बीमा का राष्ट्रीयकरण करने के वे हिमायती थे। यद्यपि 42वें संविधान संशोधन एक्ट 1976 के द्वारा भारत को एक 'समाजवादी राज्य' घोषित किया गया, किन्तु इसके पूर्व भी भारत सरकार ने 1969 में 14 बैकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया था। आज भारत एक 'समाजवादी' समाज की स्थापना हेतु सतत् प्रयासरत है।

बाबा साहब अपने चिन्तन में लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था का समर्थन करते है। इस व्यवस्था में लोकतान्त्रिक मूल्यों स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की रक्षा की जा सकती है। यह लोकतंत्र, संसदीय लोकतंत्र होना चाहिए और लोकतान्त्रिक संस्थाओं को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए ताकि वे अपने अधिकारों में रहकर समाज को एक नयी गति दे सके। इसके साथ ही साथ लोकतान्त्रिक संस्थाओं व्यवस्थापिक, कार्यपालिका को मजबूत, निष्पक्ष और निरंकुश बनने से रोकने के लिए मजबूत प्रतिपक्ष एवं राजनीतिक दलों की आवश्यकता है। इन संस्थाओं में गतिरोध कायम होने की स्थिति में तथा संविधानिक परिस्थितियों को बनाये रखने हेतु, स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका की वकालत बाबा साहब करते है।[7]

भारतीय संविधान में दलितों के लिए आरक्षण संबंधी प्रावधान शामिल करने का उद्देश्य यह था, कि निकट भविष्य में समाज में भेदभाव समाप्त हो जायेगा। शिक्षा की व्यापक सुविधाओं को उपलब्ध होने के कारण समाज के सभी वर्गों में सामंजस्य बढ़ेगा। शिक्षा के बढ़ते प्रभाव से समाज के सभी वर्गों के अन्दर ज्ञानार्जन की भावना का विस्तार हुआ है। आज दलितों के बच्चें, बच्चियाँ शिक्षित हो रहे है। जो शिक्षित हो रहे है, वे सुखी और सम्मानित हो रहे है। प्राइमरी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा, बुनियादी शिक्षा से लेकर व्यावसायिक शिक्षा, कला शिक्षा से लेकर वैज्ञानिक शिक्षा तथा विदेश शिक्षा सभी में दलित वर्ग के लड़के लड़कियाँ प्रवेश कर रही है। आज दलितों को यह भय नहीं है कि शिक्षित होने पर उन्हें दण्डित किया जा सकता है, बल्कि इसके विपरीत शिक्षित होने के लिए सरकार की तरफ से रियासतें दी जा रही है, प्रोत्साहित किया जा रहा है।

शिक्षा के प्रति आज दलित सबसे अधिक जागृत हुआ है। यही कारण है कि अर्थ और संस्कार के अभाव में पलकर भी दलित शिक्षित हुए है और हो रहे है। जो अधिक पढ़ेगा, वह अधिक बढ़ेगा। यह सिद्धान्त दलितों पर ही सच हुआ है। इनके अन्दर अपने बच्चों को शिक्षित करने की जो चेतना पैदा हुई है, वह दो हजार वर्षों के बाद की इस देश की सबसे स्मरणीय क्रान्ति है।[8]

बाबा साहब ने समस्त हिन्दू भारतीयों के लिए 'हिन्दू कोड बिल' और समस्त भारतियों के लिए 'समान नागरिक संहिता' की वकालत की। यद्यपि हिन्दू कोड बिल बाबा साहब के समय में पास नहीं हो सका, किन्तु उसका अनेक प्रावधान कालान्तर में संविधान में शामिल कर लिया गया। स्त्रियों को उनका वास्तविक हक दिलाने में यह काफी सहायक सिद्ध हुआ है। आज नारी अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने का आह्वान कर रही है। सदियों से चली आ रही परम्परा का विरोध करके नारी अपना खोया हुआ सम्मान, स्वाभिमान, अस्मिता वापस ला रही है। आज की नारी समाज सेवा का कार्य कर रही है, वह चिन्तनशील है। नारी ही नारी को जगा रही है। पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक कार्य–कुशलता, कार्य क्षमता, संवदेनशीलता और लगन के साथ काम करने की भावना होती है। आज समान नागरिक संहिता की मांग की जा रही है।

अम्बेडकर वादी दृष्टिकोण अपनाने वाली राजनीतिक पार्टियॉ इसका विरोध कर रही है, किन्तु शायद वे यह भूल रही है कि इस संहिता की मांग सर्व प्रथम बाबा साहब ने ही संविधान सभा में की थी। उनकी मांग की प्रासंगिकता का पता 'शाहबानों के केस' से भी लगाया जा सकता है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने देश के लिए समान नागरिक संहिता बनाने का आदेश दिया था, किन्तु राजनीतिक दल अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णय की अवहेलना कर रहे है।[9]

बाबा साहब ने धर्म–निरपेक्ष राज्य की वकालत की जिसके अनुसार राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा, बल्कि वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करेगा। संविधान में मौलिक अधिकारों और निर्देशक तत्वों का वर्णन समाज में समानता लाने और व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षित एवं स्वतंत्र रखने के उद्देश्य के लिए तथा राज्य को उसी के अनुरूप अपनी नीतियों को निर्धारित करने के लिए किया गया। पिछले कुछ वर्षों से देश की आर्थिक समस्याऐं इतनी जटिल हो गयी है, कि आर्थिक विषमता बढ़ती ही जा रही है। प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख बेरोजगार तैयार हो रहे है। युवक सभी ओर दिशाहीन और बेचेन दिखाई दे रहे है। इसके लिए आरक्षण की नीति को दोषी बतलाया जा रहा है। परिणामस्वरूप युवकों के अन्दर जातीय विद्वेष की भावना बढ़ रही है और दलित विरोध की भावना प्रबल हो रही है। आरक्षण के प्रावधान को लेकर बढ़ रहे असंतोष को बढ़ावा देने में अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पत्रकार और राजनेता दोनों ही भूमिका अदा कर रहे है। फलतः बाबा साहब के सपनों का भारत, जिसमें समतामूलक समाज की कल्पना की गयी है, काफी दूर निकल गया है।[10] एक विचित्र विसंगति स्पष्ट दिखाई पड़ रही है कि संविधान में हम अधिक प्रगतिशील है। कानून बनाते समय हम समता मैत्री और बन्धुत्व के मूल्यों को महत्व दे रहे थे। परन्तु प्रत्यक्ष आचरण में प्रशासन में स्थितियॉ ठीक विपरीत है।

भारतीय राजनीति पर बाबा साहब का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। शिक्षा के प्रचार प्रसार और सुविधाओं के कारण दलितों की आशा आकांक्षाऐं बढ़ रही है। उन्हें मूर्त रूप देने हेतु वे दबाव की राजनीति का उपयोग कर रहे है। उनका गुट नाराज न हो, इसलिए उनके साथ समझौते किये जा रहे है।[11]

निष्कर्षः– संक्षेप में बाबा साहब के अथक प्रयासों से संविधान में दलितों को सुविधाऐं प्रदान की गयी है, उसका भरपूर फायदा दलित समाज उठा रहा है। बाबा साहब का यह मत था कि जब तक सवर्णो की मानसिकता में परिवर्तन नहीं आ जाता, समता मूलक समाज की स्थापना नहीं हो सकती। उनके जीते जी इस प्रकार का परिवर्तन उन्हें नहीं दिखलाई दिया। परन्तु विगत 35–40 वर्षों में सवर्णों में बदलाव के संकेत दिखाई पड़ रहे है। वामपंथी और प्रगतिशील पार्टियाँ, विचारकों, लेखकों और कलाकारों ने इस दृष्टि में महत्वपूर्ण कार्य किया है। आज अधिकांश समाज दलितों को स्वीकार करने लगा है। वयस्क मताधिकार और संसद/विधान मण्डल में आरक्षण के कारण इस वर्ग को समाज से अलग कर नहीं देखा जा सकता। शायरे इन्कलाब–हजरत जोश मलीहाबादी की निम्नलिखित पंक्तियॉ बाबा साहब के जीवन संघर्ष को कितना स्पष्ट तौर पर उजागर करती हैः–

जिसने कलबे तीरगी से नूए पैदा कर दिया,
जिसकी जां बख्शी ने मुर्दो को मसीहा कर दिया।
तेरी पिनहा कुव्वतों से आज भी दुनिया है दंग,
किस तरह तूने मिटाया, इमतिआजे नसल ओ रंग।

सन्दर्भ सूचीः–

1. डॉ. एस. राधाकृष्णनः रिलिजिन एण्ड सोसायटी, 1956, पृ. 132
2. बी.एन. पुरीः इण्डियन हिस्ट्री ऐ रिव्यू, 1960, पृ. 14
3. मंगलदेव शास्त्रीः भारतीय संस्कृति का इतिहास, पृ. 18
4. बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाडंमय, खण्ड–6, 1998, पृ. 141
5. राव साहब कसबेः अम्बेडकर आणि मार्क्स, 1985 मराठी, पृ. 19
6. डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः रायटिंग्स एण्ड स्पीचेज, वोल्यूग–13, पृ. 1208
7. नमन जोशीः डॉ. बाबा साहब अम्बेडकरः चरित्र व कार्य, 1989, पृ. 49
8. धनंजय कीरः डॉ. बाबा साहब अम्बेडकरः जीवन चरित, 1996, पृ. 141
9. डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः हिन्दू नारी का उत्थान और पतन, (कलकत्ता के अंग्रेजी, मासिक 'महाबोधि' के मई, 1950 के अंक से)
10. यल.आर. बालीः डॉ. अम्बेडकर जीवन और मिशन, 2005, पृ. 88
11. भालचन्द्र फडकेः डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर, 2008 मराठी, पृ. 97